वेद अनादि एवं नित्य हैं

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

प्रमेयकी सिद्धि प्रमाणपर निर्भर होती है। प्रमाणशून्य विचारवाद, सिद्धान्त सब अप्रामाणिक, भ्रान्त, विनश्वर और हेय भी समझे जाते हैं। जैसे रूप जाननेके लिये निर्दोष चक्षु, गन्धके लिये घ्राण, शब्दके लिये श्रोत्र, रसके लिये रसना, स्पर्शके लिये त्वक् और सुख-दुःखके लिये मन-प्रमाण अपेक्षित है; वैसे ही अनुमेय प्रकृति, परमाणु आदिके ज्ञानके लिये हेत्वाभासोंपर अनाधृत, व्यभिचारादि-दोषशून्य व्याप्तिज्ञान या व्याप्य हेतुपर आधृत अनुमान अपेक्षित होता है। ठीक इसी प्रकार धर्म, ब्रह्म आदि अतीन्द्रिय और अननुमेय पदार्थोंके ज्ञानके लिये स्वतन्त्र शब्द-प्रमाण अपेक्षित है। संसारमें सर्वत्र पिता-माताको जाननेके लिये पुत्रको शब्द-प्रमाणकी आवश्यकता होती है। न्यायालयोंके लेखों एवं साक्षियोंके शब्दोंके आधारपर ही आज भी सत्यका निर्णय किया जाता है।

फिर भी वैदिक शब्द-प्रामाण्य उनसे विलक्षण है। कारण, लोकमें शब्द कहीं भी स्वतन्त्र प्रमाण नहीं होते, वे प्रत्यक्ष एवं अनुमानपर आधृत होते हैं। उनके आधारभूत प्रत्यक्ष तथा अनुमानमें दोष होने अथवा वक्ताके भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणपाटव आदि दोषोंसे दूषित होनेके कारण उनमें कहीं अप्रामाण्य भी सम्भव होता है। दोषशून्य प्रत्यक्षादि प्रमाणोंपर आधृत समाहित निर्दोष आप्त वक्ताके शब्दोंका ही प्रामाण्य होता है।

किंतु अपौरुषेय मन्त्र-ब्राह्मणरूप वेद तो सदा प्रमाण ही होते हैं, अप्रमाण नहीं। शब्दका प्रामाण्य सर्वत्र मान्य है, उसका अप्रामाण्य वक्ताके भ्रम-प्रमादादि दोषोंपर ही निर्भर होता है। यदि कोई ऐसे भी शब्द हों जो किसी वक्तासे निर्मित न हों तो उनके वक्तृदोषसे दूषित न होनेके कारण अप्रामाण्यका कारण न होनेसे सुतरां उनका स्वतः प्रामाण्य मान्य होता है। ऐसे ही उपमान, अर्थापत्ति और अनुपलब्धि प्रमाण भी मान्य हैं। ऐतिह्य-चेष्टा आदि कोई स्वतन्त्र प्रमाण नहीं; क्योंकि प्रवाद या ऐतिह्य यदि आप्त-परम्परासे प्राप्त हैं तो वे आप्त वाक्यमें ही आ जाते हैं और चेष्टादि आन्तर भावोंके अनुमापक होनेसे अनुमानमें ही निहित समझे जाते हैं।

जिन शब्दों या वाक्योंका पठन-पाठन एवं तदर्थानुष्ठान अविच्छिन्न अनादि सम्प्रदाय-परम्परासे प्रचलित हो और जिनका निर्माण या निर्माता प्रमाण-सिद्ध न हो, ऐसे वाक्य या ग्रन्थ अनादि एवं अपौरुषेय ही होते हैं। मन्त्र-ब्राह्मणात्मक शब्दराशि इसी दृष्टिकोणसे अनादि एवं अपौरुषेय मानी जाती है। गो, घट, पट आदि बहुत-से शब्द भी, जिनका निर्माण प्रमाण-सिद्ध नहीं है और जो अनादिकालसे व्यवहारमें प्रचलित हैं, नित्य माने जाते हैं।

नैयायिक, वैशेषिक आदिके मतानुसार यद्यपि वर्ण एवं शब्द सभी अनित्य ही हैं; तथापि पूर्वोत्तर मीमांसकोंकी दृष्टिसे वर्ण नित्य ही होते हैं। क्योंकि—'अ क च ट त प' आदि वर्ण प्रत्येक उच्चारणमें एकरूपसे ही पहचाने जाते हैं। अवश्य ही कण्ठ-तालु आदिके भेदसे ध्वनियोंमें भेद भासता है, अतः ध्वनियोंके अनित्य होनेपर भी वर्ण सर्वत्र अभिन्न एवं नित्य हैं। नियत वर्णोंकी नियत आनुपूर्वीको ही 'शब्द' एवं नियत शब्दोंकी नियत आनुपूर्वीको 'वाक्य' कहा जाता है। यद्यपि वर्णोंके नित्य एवं विभु होनेसे उनका देशकृत तथा कालकृत पौर्वापर्य असम्भव ही होता है और पौर्वापर्य न होनेसे शब्द एवं वाक्य-रचना असम्भव ही है; तथापि कण्ठ-तालवादिजनित वर्णोंकी अभिव्यक्तियाँ अनित्य ही होती हैं। अतः उनका पौर्वापर्य सम्भव है और उसीके आधारपर पदत्व तथा वाक्यत्व भी बन जाता है।

यद्यपि वर्णाभिव्यक्तियोंके अनित्य होनेसे पदों एवं वाक्योंकी भी अनित्यता ही ठहरती है; तथापि जिन पदों एवं वाक्योंका प्रथम उच्चारयिता या पूर्वानुपूर्वी-निरपेक्ष-आनुपूर्वी निर्माता प्रमाण-सिद्ध नहीं, उन पदों एवं वाक्योंको प्रवाहरूपसे नित्य ही माना जाता है। 'रघुवंश' आदिके प्रथम आनुपूर्वी-निर्माता या उच्चारयिता कालिदास आदि हैं, किंतु वेदोंका अनादि अध्ययन-अध्यापन अनादि आचार्य-परम्परासे ही चलता आ रहा है। अतः उनका निर्माता या प्रथमोच्चारयिता कोई नहीं है। 'रघुवंश' आदिके उच्चारयिता हम-जैसे भी हो सकते हैं, पर प्रथम उच्चारयिता कालिदासादि ही हैं, हम लोग तो पूर्वानुपूर्वीसे सापेक्ष होकर ही उच्चारयिता हैं, ह्यनिरपेक्ष नहीं। किंतु

वेदोंका कोई भी निरपेक्ष उच्चारयिता या प्रथम उच्चारयिता नहीं है। सभी अध्यापक अपने पूर्व-पूर्वके अध्यापकोंसे ही वेदका अध्ययन या उच्चारण करते हैं, इसलिये वेद अनादि एवं नित्य माने जाते हैं।

गो, घट आदि शब्दोंका नित्यत्व वैयाकरण एवं पूर्वोत्तर मीमांसक भी मानते हैं और शब्दकी शक्ति भी जातिमें मानते हैं। इसीलिये शब्द और अर्थका सम्बन्ध शक्ति या संकेत भी उन्हें नित्य ही मान्य है।

यद्यपि 'डित्थ', 'डवित्थ' आदि यदृच्छा-शब्दोंके समान कुछ शब्द सादि भी होते हैं; तथापि तद्भिन्न पुण्यजनक सभी साधु-शब्द अनादि एवं नित्य ही होते हैं। हम अनादि कालसे ही गो, घट आदि शब्दों और उनके अर्थोंके सम्बन्धोंका ज्ञान वृद्ध-व्यवहार-परम्परासे प्राप्त करते हैं। इनमें शक्ति-ग्राहकहेतु व्याकरण, काव्य, कोष आदिमें वृद्ध-व्यवहार ही मूर्धन्य माना जाता है। धूम-वह्निका सम्बन्ध स्वाभाविक सम्बन्ध है तथा धूम-वह्निका व्याप्ति-सम्बन्ध ज्ञात होनेपर ही धूमसे वह्निका अनुमान होता है, अन्यथा नहीं। इसी तरह शब्द एवं अर्थका स्वाभाविक सम्बन्ध होनेपर भी व्यवहारादिद्वारा सम्बन्ध-ज्ञान होनेपर ही शब्द भी स्वार्थका बोधक होता है। यद्यपि नैयायिक, वैशेषिक आदि शब्द एवं अर्थके सम्बन्ध ईश्वरकृत होनेसे शब्द-अर्थ और उनके सम्बन्धको अनित्य ही मानते हैं; तथापि सृष्टि-प्रलयकी परम्परा अनादि होनेसे सभी सृष्टियोंमें सम्बन्ध समानरूपसे रहते हैं। अतः उनके यहाँ भी शब्द-अर्थ और उनके सम्बन्ध प्रवाहरूपसे नित्य ही होते हैं।

पूर्वोत्तर मीमांसक वर्ण, पद एवं पद-पदार्थ-सम्बन्ध तथा वाक्य एवं वाक्य-समूह वेदको भी नित्य मानते हैं।

इतिवृत्तवेत्ता भी संसारके पुस्तकालयोंमें सर्वप्राचीन पुस्तक 'ऋग्वेद' को ही मानते हैं। लोकमान्य तिलकने 'ओरायन' में युधिष्ठिरसे भी हजारों वर्ष पूर्व वेदोंका अस्तित्व सिद्ध किया है। श्रीदीनानाथ चुलेटने कई मन्त्रोंको लाखों वर्ष प्राचीन सिद्ध किया है।

मनु, व्यास, जैमिनि प्रभृति ऋषियों तथा स्वयं वेदने भी वेदवाणीको नित्य कहा है—

'वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्थाश्च निर्ममे'॥

(मनु० १। २१)

'अतएव च नित्यत्वम्' (ब्र०सू० १। ३। २९)

'वाचा विरूप नित्यया' (ऋक्० ८। ७५। ६)

'औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः'

(जैमिनि० सूत्र १। ५)

वाक्यपदीयकारके अनुसार प्रत्येक ज्ञानके साथ सूक्ष्मरूपसे शब्दका सहकार रहता है। कोई भी विचारक किसी भाषामें ही विचार करता है—

'न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।'

(वाक्यपदीय १। १२३)

'जानाति, इच्छति, अथ करोति' के अनुसार ज्ञानसे इच्छा एवं इच्छासे ही कर्म होते हैं—**'ज्ञानजन्या भवेदिच्छा इच्छाजन्या भवेत् कृतिः।'** अतः सृष्टि-निर्माणके लिये सर्वज्ञ ईश्वरको भी ज्ञान, (विचार) इच्छा एवं कर्मका अवलम्बन करना पड़ता है। जिस भाषामें ईश्वर सृष्टिके अनुकूल ज्ञान या विचार करता है, वही भाषा वैदिक भाषा है। ईश्वर एवं उसका ज्ञान अनादि होता है। अतएव उसके ज्ञानके साथ होनेवाली भाषा और शब्द भी अनादि ही हो सकते हैं। वे ही अनादि वाक्य-समूह 'वेद' कहलाते हैं। बीज और अङ्कुरके समान ही जाग्रत्-स्वप्न, जन्म-मरण, सृष्टि-प्रलय तथा कर्म एवं कर्मफलकी परम्परा भी अनादि ही होती है। अनादि प्रपञ्चका शासक परमेश्वर भी अनादि ही होता है। अनादिकालसे शिष्ट (शासित) जीव एवं जगत्पर शासन करनेवाले अनादि शासक परमेश्वरका शासन-संविधान भी अनादि ही होता है। वही शासन-संविधान 'वेद' है।*

[प्रेषक—प्रो० श्रीबिहारीलालजी टांटिया]

---

*विशेष जानकारीके लिये लेखकद्वारा विरचित ग्रन्थ 'वेदप्रामाण्य-मीमांसा', 'वेदका स्वरूप और प्रामाण्य' (भाग २) और 'वेद-स्वरूप-विमर्श' (संस्कृत) द्रष्टव्य हैं।